

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 12: भरत का उत्तर

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपना अभिमान विलीन कर, राजा रूहण हाथ जोड़े ऋषि जड़ भरत के समक्ष बैठे हैं, एक ऐसे उपदेश को हृदय में उतारते हुए जो नाम और रूप के समूचे संसार को उस एक अपरिवर्तनीय सत्य के प्रकाश में उठा देता है, जिसे विवेकी जन वासुदेव कहते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पंचम स्कन्ध के इस बारहवें अध्याय में, वही शक्तिशाली राजा रूहण — जिसने कुछ ही समय पूर्व अपनी पालकी ढोने वाले मौन ऋषि का उपहास और उन्हें धमकाया था — अब हाथ जोड़े उनके समक्ष झुकता है, उनके शब्दों को एक ऐसा अमृत कहते हुए जिसने अभिमान से विषाक्त हृदय

को स्वस्थ कर दिया। और उस विनम्र लालसा से समस्त शास्त्र के सबसे गहन उपदेशों में से एक बहता है। कोमल, अकाट्य स्पष्टता से, ऋषि “राजा” और “कहार,” मोटे और दुबले, बड़े और छोटे के विचार को ही खोल देते हैं, उन सबको भगवान् की अपनी शक्ति से बुने संसार पर टिके क्षणभंगुर नामों के रूप में दिखाते हुए — जब तक केवल वही एक शुद्ध चैतन्य शेष रह जाता है, जिसे विवेकी जन वासुदेव कहते हैं। और फिर, कोमलता से, वे अपना वेश हटाकर राजा को बताते हैं कि वे वास्तव में कौन हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 12 (द्वादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: राजा रूहण को जड़ भरत का उत्तर
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर, ऋषि जड़ भरत (ब्राह्मण) राजा रूहण से बोलते हैं, जो पहले उनसे प्रश्न करते हैं
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: वह मार्ग जिस पर राजा रूहण पालकी में यात्रा करते हैं, जहाँ वे उतरकर विनम्रता से ऋषि के चरणों में बैठ गए हैं
- केन्द्रीय विषय: राजा रूहण की श्रद्धापूर्ण वन्दना और प्रश्न, और ऋषि का उत्तर — कि समस्त सांसारिक भेद भगवान् की माया की रचना पर मात्र नाम हैं, कि वासुदेव नामक शुद्ध चैतन्य ही एकमात्र सत्य है, कि यह केवल महान् भक्तों के चरणों की धूल से प्राप्त होता है, और ऋषि का यह प्रकटन कि वे कभी राजा भरत थे
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 1–16
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

ग्यारहवें अध्याय में, ऋषि ने — अब भी पालकी ढोते हुए — राजा रूहण को सिखाया कि मन ही बन्धन और मुक्ति दोनों का सच्चा मूल है। उन्होंने वर्णन किया कि किस प्रकार अपनी अनेक वृत्तियों और प्रकृति के गुणों से प्रेरित चंचल मन आत्मा को अन्तहीन कर्म और उसके फलों से बाँधता है, जबकि आत्मा भीतर केवल मौन साक्षी रहती है। और उन्होंने राजा को प्रेरित किया कि वह एक सच्चे गुरु और भगवान् की प्रेमपूर्ण सेवा की शरण लेकर मन की दृढ़ गाँठ को काट दे। अब, अपने हृदय के बिंधने और कोमल होने पर, राजा रूहण पुनः ऋषि की ओर मुड़ते हैं — अब आज्ञा देने नहीं, अपितु पूजने और सीखने के लिए।

राजा रूहण की वन्दना

जहाँ क्षण भर पहले अपने आसन पर एक अभिमानी शासक था, वहाँ अब केवल एक विनम्र जिज्ञासु था। राजा रूहण ने ऋषि के समक्ष बार-बार प्रणाम किया, उन्हें नमन करते हुए जिन्होंने संसार के हित के लिए यह देवतुल्य रूप धारण किया, और जो आत्म-साक्षात्कार के आनन्द में स्थित होकर अपनी ही देह को तुच्छ मानते हैं। उन्होंने उन्हें एक अवधूत के रूप में अभिवादन किया — एक मुक्त आत्मा जो स्वतन्त्र विचरती है

— जिसने अपने नित्य, सदा-विद्यमान अनुभव को एक ऐसे ब्राह्मण के मात्र बाह्य चिह्न के नीचे छिपा रखा था जिसे संसार तुच्छ समझता था।

रहूगण उवाच

नमो नमः कारणविग्रहाय

स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।

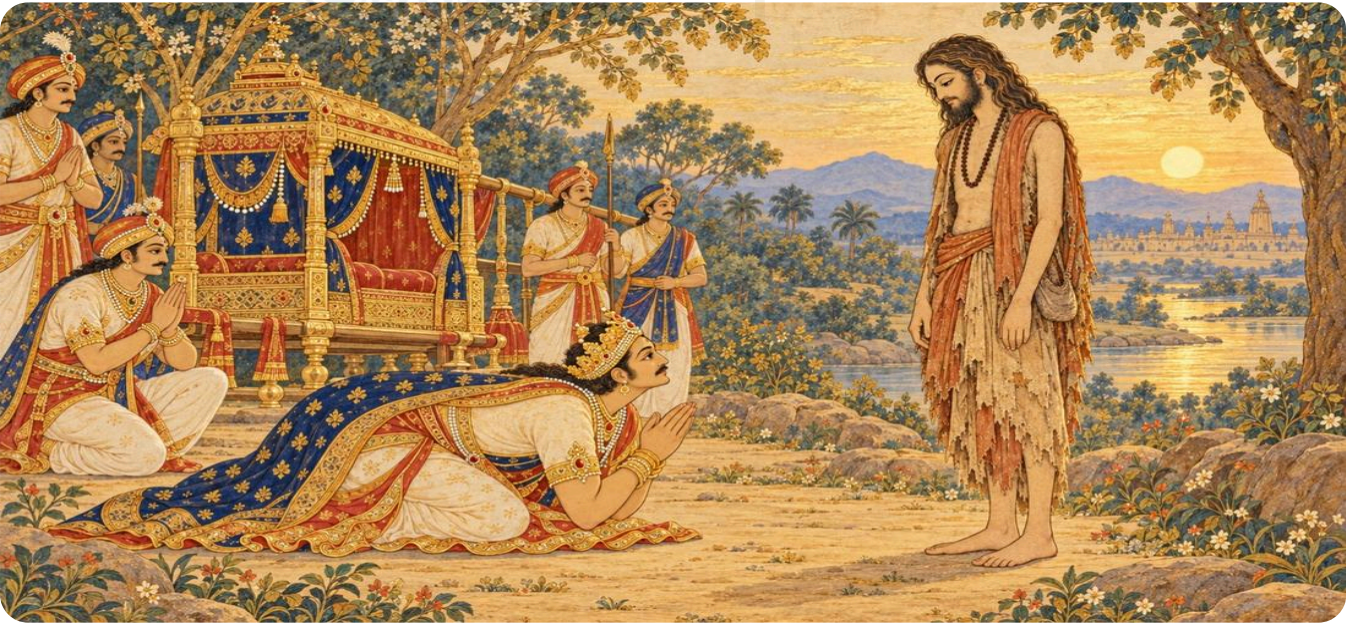
नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्ग-

निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥

rahūgaṇa uvāca namo namaḥ kāraṇa-vigrahāya svarūpa-tucchīkṛta-vigrahāya namo 'vadhūta dvija-bandhu-liṅga- nigūḍha-nityānubhavāya tubhyam

अर्थ: रहूगण बोले — हे कारण-स्वरूप, आपको बारम्बार वन्दन, जिन्होंने लोक-कल्याण हेतु यह अलौकिक वेश धारण कर रखा है और आत्म-आनन्द में डूबकर अपनी देह को नगण्य मान बैठे हैं। हे अवधूत, प्रणाम, जिन्होंने अपने सनातन, सतत अनुभव को एक साधारण ब्राह्मण के भेष में छिपा दिया है। (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 1)

राजा ने बताया कि ऋषि के शब्द उस तक कैसे पहुँचे। ज्वर से जलते हुए को स्वस्थकारी औषधि के समान, धूप से झुलसे हुए को शीतल जल के समान, वह उपदेश उसके लिए एक अमृततुल्य औषधि सिद्ध हुआ था — उसके लिए, जिसकी दृष्टि इस नश्वर देह से तादात्म्य के कारण, मानो साँप से डँसी हुई, विकृत हो गई थी। उसने ऋषि से प्रार्थना की कि वे उस शंका को, जो वह बाद में उठाएगा, अभी के लिए एक ओर रख दें, और उसे अब, सरल और स्पष्ट रूप में, वह उपदेश समझाएँ जो इतने गहन आध्यात्मिक अर्थ से भरा है; क्योंकि उसका मन अब भी उन शब्दों से भ्रमित था कि कर्म और उनके दृश्य फल, यद्यपि मिथ्या नहीं, सत्य की सूक्ष्म परीक्षा में नहीं ठहर सकते।



अपना राजकीय अभिमान विलीन कर, राजा रहूगण ऋषि को बार-बार प्रणाम करते हैं, उनके शब्दों को एक ऐसा अमृत कहते हुए जिसने देह से तादात्म्य से विषाक्त हृदय को स्वस्थ कर दिया (श्लोक 1-4)।

देह मात्र पृथ्वी का एक विकार है

तब ब्राह्मण ने अपना उत्तर आरम्भ किया, और पहले ही शब्दों से उन्होंने राजा की प्रत्येक धारणा के नीचे की भूमि को ढीला कर दिया। जो वस्तु पृथ्वी पर चलती-फिरती है, उन्होंने कहा, वह स्वयं ही पृथ्वी का एक विकार मात्र है, और किसी न किसी कारण से वह “एक मनुष्य” कहलाने लगती है — वही पालकी का वाहक। उसके चरणों के ऊपर टखने और पिंडलियाँ, घुटने और जाँघें, कमर और वक्ष, गर्दन और दो कन्धे स्थित हैं। और उन कन्धों में से एक पर वह काष्ठ की पालकी टिकी है, जिसमें पृथ्वी का एक और विकार बैठा है जिसे मनुष्यों ने “सौवीर का राजा” उपाधि दी है। उस मिट्टी के छोटे-से ढेर से अपना तादात्म्य कर, ऋषि ने कोमलता से कहा, राजा ने कल्पना की “मैं सिन्धुओं का शासक हूँ,” एक रिक्त और विनाशकारी अभिमान से अन्धा होकर।

ब्राह्मण उवाच

अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां

यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।

तस्यापि चाङ्घ्र्योयोरधि गुल्फजङ्घा-

जानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥

अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां

सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।

यस्मिन् भवान् रूढनिजाभिमानो

राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ ॥

brāhmaṇa uvāca ayaṁ jano nāma calan pṛthivyām yaḥ pāṛthivaḥ pāṛthiva kasya hetoḥ tasyāpi cāṅghryor adhi gulpha-jaṅghā- jānūru-madhyora-śīrodharāṁsāḥ aṁse 'dhi dārvī śibikā ca yasyām sauvīra-rājety apadeśa āste yasmin bhavān rūḍha-nijābhimāno rājāsmi sindhuṣv iti durmadāndhaḥ

अर्थ: ब्राह्मण बोले — हे राजन्, यह जो प्राणी धरती पर चलता-फिरता है, वह मिट्टी के ही एक रूपान्तर से अधिक कुछ नहीं, और लोकभाषा में इसे “मनुष्य” कह दिया जाता है। इसके चरणों से ऊपर टखने, पिंडली, घुटने, जाँघ, कमर, वक्ष, ग्रीवा और कन्धे क्रमशः स्थित हैं; और उन्हीं कन्धों में से एक पर लकड़ी की डोली रखी है, जिसके भीतर मिट्टी का एक और ही रूपान्तर विराजमान है, जिसे लोग “सौवीर-नरेश” कहकर पुकारते हैं। उसी से अपनी पहचान जोड़कर तुम मान बैठे हो, “मैं सिन्धु देश का स्वामी हूँ,” और इसी थोथे अभिमान में अंधे हो गए हो। (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 5-6)

न ही ऋषि ने राजा के अन्तःकरण को छोड़ा। जिन दीन लोगों को उसने बिना मज़दूरी अपने लिए श्रम करने को विवश किया था, उन्होंने कहा — वे लोग जो पहले से ही दुःख से पीड़ित और दया के योग्य थे — उसकी निष्ठुरता के साक्षी थे; और जब वह डींग मारता था कि वह उनका रक्षक और पालक है, तब वह विवेकियों की दृष्टि में केवल एक हास्यास्पद पात्र बन जाता था।



ऋषि सिखाते हैं कि नीचे का कहार और ऊपर का राजा दोनों समान रूप से पृथ्वी के विकार मात्र हैं, अतः "शासक" और "शासित" की उपाधियाँ एक भ्रान्त अभिमान के अतिरिक्त किसी वस्तु पर नहीं टिकतीं (श्लोक 5-7)।

समस्त भेद केवल नाम हैं

यह दिखा देने पर कि पालकी-वाहक और राजा दोनों समान रूप से पृथ्वी से गढ़े गए हैं, ऋषि ने प्रश्न को उसके मूल तक पहुँचाया। जब हम स्पष्ट देखते हैं कि यह समूचा चर और अचर संसार सदा पृथ्वी से उठता और उसी में विलीन होता है, उन्होंने पूछा, तो हमारे समस्त व्यवहारों के लिए — स्वामी और सेवक, शासक और प्रजा के लिए — मिट्टी के क्षणभंगुर रूपों को दिए गए मात्र नामों के अतिरिक्त कौन-सा वास्तविक आधार है?

यदा क्षितावेव चराचरस्य

विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।

तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं

निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम् ॥ ८ ॥

yadā kṣitāv eva carācarasya vidāma niṣṭhām prabhavaṁ ca nityam tan nāmato 'nyad vyavahāra-mūlaṁ nirūpyatām sat-kriyayānumeyam

अर्थ: जब यह स्पष्ट है कि गतिशील और स्थिर, दोनों प्रकार के समस्त प्राणी सदा मिट्टी से ही उपजते और अन्ततः उसी में लीन हो जाते हैं, तो कहो — नामों के परे, हमारे व्यवहार की नींव में और कौन-सी सच्चाई है, जिसे किसी कर्म द्वारा प्रमाणित किया जा सके? (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 8)

और वह “पृथ्वी” शब्द भी, उन्होंने आगे कहा, किसी अन्ततः ठोस वस्तु के रूप में नहीं ठहरता। वह भी, विचार करने पर, अपने सूक्ष्मतरंग कणों में विलीन हो जाता है; और वे परमाणु स्वयं, जिनके संयोग से पृथ्वी नामक तत्त्व का उत्पन्न होना कहा जाता है, मन द्वारा अविद्या से केवल कल्पित हैं। ऐसा ही है, उन्होंने कहा, उस सब के साथ जो हमें प्रतीत होता है — दुबला या मोटा, छोटा या बड़ा, कारण या कार्य, सजीव या निर्जीव। यह

सब माया की रचना जानना चाहिए, भगवान् की अपनी अनादि शक्ति की, जिसे मनुष्य अनेक नामों से पुकारते हैं: द्रव्य और स्वभाव, आशय और कालरूप तथा कर्म। ये एक स्वप्न के बदलते नाम हैं; ये जाग्रत् सत्य नहीं हैं।



ऋषि समूचे दृश्य संसार को — बड़ा और छोटा, चर और अचर — पृथ्वी से उठते और उसी में विलीन होते दिखाते हैं, भगवान् की माया से बुने क्षणभंगुर नामों की एक लीला (श्लोक 8-10)।

वह एक सत्य, जिसे विवेकी जन वासुदेव कहते हैं

तब वह सत्य कहाँ है जो नष्ट नहीं होता? संसार को उसकी प्रत्येक मिथ्या ठोसता से रिक्त कर देने पर, ऋषि ने अब राजा की दृष्टि उस एक वस्तु की ओर उठाई जो स्थिर रहती है। चैतन्य ही एकमात्र सत्य है, उन्होंने कहा — चैतन्य जो पूर्णतया शुद्ध, परम, एक और अद्वितीय है, जिसका न कोई भीतर है न बाहर, जो स्वयं में पूर्ण, पूर्णतया आत्मोन्मुख, और सदा अपरिवर्तनीय है। यही है जो “भगवान्” शब्द से अभिप्रेत है, सर्वशक्तिमान् और सर्वैश्वर्ययुक्त प्रभु; और यही, द्रष्टा घोषित करते हैं, वासुदेव है, समस्त प्राणियों का विश्राम-स्थल और शरण।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-
मनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं
यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥

*jñānam viśuddham paramārtham ekam anantaram tv abahir brahma satyam pratyak
prasāntam bhagavac-chabda-samjñam yad vāsudevam kavayo vadanti*

अर्थ: चैतन्य ही सत्य है — चैतन्य जो शुद्ध, परम, एक और अद्वितीय है, जिसका न भीतर है न बाहर, जो पूर्ण, आत्मोन्मुख और अपरिवर्तनीय है; यही है जो “भगवान्” शब्द से पुकारा जाता है, जिसे द्रष्टा वासुदेव कहते हैं, समस्त प्राणियों का आश्रय। (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 11)

ऋषि इस सत्य को एक साथ नहीं, अपितु क्रमशः बढ़ते हुए तीन चरणों में क्यों प्रस्तुत करते हैं, इसका एक गूढ़ कारण है। जो ज्ञान वे वर्णन करते हैं, वह पहले ब्रह्म के रूप में झलकता है — निर्गुण, सर्वव्यापी प्रकाश, जिसे संसार के नाम-रूप का निषेध करने वाले पा लेते हैं। जो योगी इससे भी आगे बढ़कर उसी सत्य को हृदय में एक जीवन्त उपस्थिति के रूप में खोजते हैं, वे उसे परमात्मा जानते हैं, अन्तर्यामी सुपरसोल। किन्तु ऋषि स्पष्ट करते हैं कि इनमें से कोई भी अन्तिम पड़ाव नहीं है: वही एक सत्य, पूर्णतः जाना जाने पर, भगवान् है — अनन्त गुण, रूप और लीलाओं से युक्त प्रभु, जिन्हें विवेकी जन वासुदेव कहते हैं। इसीलिए राजा रहूगण का “राजा” और “कहार” के भेद को नकारना केवल पहला कदम था; ऋषि उसे किसी रिक्त, निर्गुण सत्य में विश्राम करने के लिए नहीं छोड़ते, अपितु उसे उस पूर्ण, सगुण सत्य तक ले जाते हैं जो साक्षात् भगवान् हैं। (श्लोक 11)

महान् भक्तों के चरणों की धूल

किन्तु यह शुद्ध सत्य किस प्रकार प्राप्त हो? यहाँ ऋषि ने अपने उपदेश के हृदय में छिपे कोमल रहस्य को प्रकट किया, और वह वैसा न था जैसी एक राजा अपेक्षा करता। यह चैतन्य, उन्होंने कहा, न तपस्या से जीता जाता है, न यज्ञों से, न अन्न और धन दान करने से, न गृहस्थ के कर्तव्यों के निर्वाह से, न वेदों के अध्ययन से, और न जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना से — इनमें से किसी अकेले से नहीं। यह एक ही वस्तु से प्राप्त होता है: महान् आत्माओं, भगवान् के शुद्ध भक्तों के चरणों की धूल में स्वयं को स्नान कराने से।

रहूगणैतत्तपसा न याति

न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।

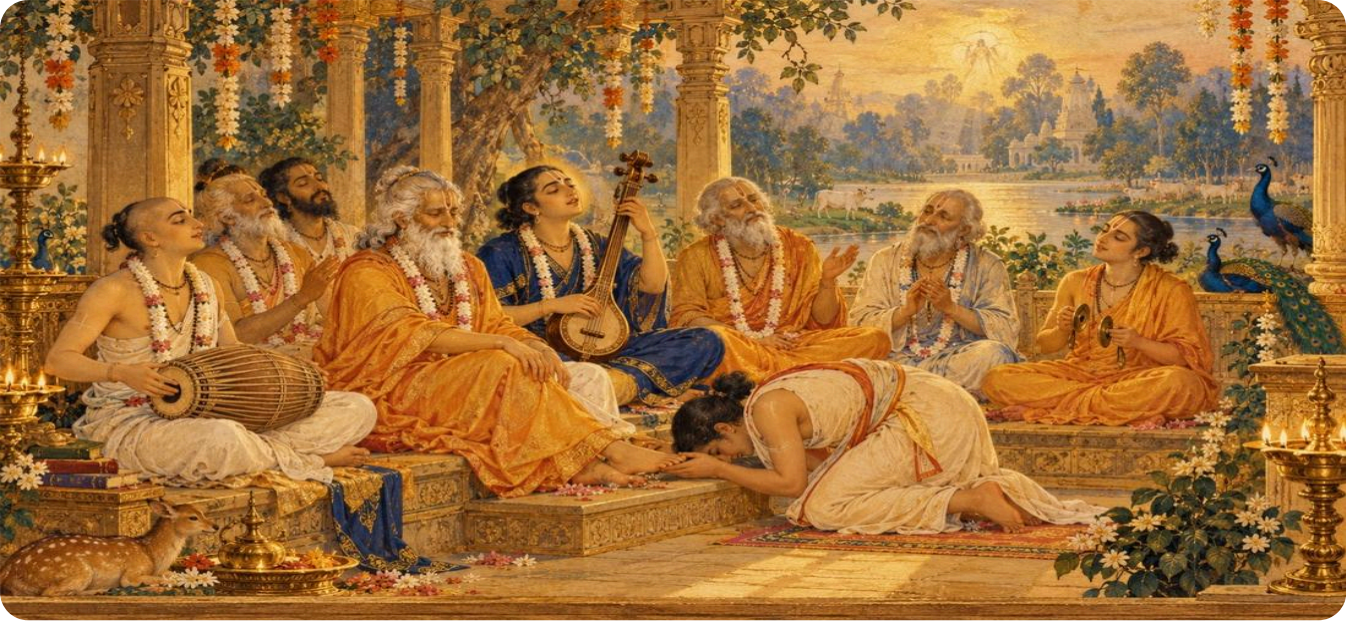
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-

र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥

rahūgaṇaitat tapasā na yāti na cejyayā nirvapaṇād gṛhād vā na cchandasā naiva jalāgni-sūryair vinā mahat-pāda-rajo-'bhiṣekam

अर्थ: हे रहूगण, न तप इसे देता है, न यज्ञ, न दान, न गृहस्थी का पालन, न वेद-पाठ, और न जल, अग्नि व सूर्य की पूजा — यह तभी मिलता है जब महापुरुषों के चरणों की रज को अपने मस्तक पर धारण किया जाए। (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 12)

क्योंकि ऐसी पावन आत्माओं की संगति में ही, ऋषि ने समझाया, भगवान् की महिमा और श्रेष्ठताएँ गाई और सुनी जाती हैं। उनकी सभाएँ सांसारिक भोगों की समस्त रिक्त बातचीत को रोक देती हैं; और वे पावन प्रवचन, दिन-प्रतिदिन सुने जाने पर, मुक्ति के अभिलाषी के शुद्ध मन को कोमलता से खींचकर पूर्णतया भगवान् वासुदेव पर स्थिर कर देते हैं।



ऋषि एकमात्र निश्चित मार्ग प्रकट करते हैं: कर्मकाण्ड या तपस्या नहीं, अपितु महान् भक्तों के चरणों की धूल, जिनकी संगति में भगवान् की महिमा गाई और सुनी जाती है (श्लोक 12-13)।

ऋषि प्रकट करते हैं कि वे कभी राजा भरत थे

और अब, राजा को अभिमान से लालसा तक उठा देने के बाद, ऋषि ने अपना ही वेश उठा दिया। वे सदा यह धूल और यह मौन धारण नहीं करते थे, उन्होंने कहा। कभी वे भी एक राजा थे — भरत नामक — जिन्होंने इस संसार में देखे या अगले लोक में सुने गए भोगों के प्रति समस्त आसक्ति के बन्धन से स्वयं को मुक्त कर लिया था, और अपने समूचे हृदय से भगवान् की आराधना का प्रयत्न किया था। फिर भी एक ही कोमल आसक्ति के द्वारा — एक अनाथ मृग के प्रति उनके प्रेम से — वे स्वयं एक मृग के रूप में पुनर्जन्म ले बैठे, और इस प्रकार कुछ काल के लिए उस लक्ष्य को ही खो दिया जिसे उन्होंने खोजा था।

अहं पुरा भरतो नाम राजा

विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।

आराधनं भगवत ईहमानो

मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ १४ ॥

*aham purā bharato nāma rājā vimukta-dṛṣṭa-śruta-saṅga-bandhaḥ ārāadhanam bhagavata
īhamāno mṛgo 'bhavam mṛga-saṅgād dhatārthaḥ*

अर्थ: मैं पूर्व में भरत नामक एक राजा था, जो इस लोक में देखे या परलोक में सुने गए के प्रति समस्त आसक्ति के बन्धन से मुक्त था। भगवान् की आराधना का प्रयत्न करते हुए भी, मैं एक मृग के प्रति आसक्ति से मृग बन गया, और इस प्रकार अपना लक्ष्य खो बैठा। (स्कन्ध 5, अध्याय 12, श्लोक 14)

फिर भी भगवान् की कृपा ने उन्हें तब भी नहीं छोड़ा था। उनके पूर्वजन्म की स्मृति, जो भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना से उनमें जागृत हुई थी, उस पशु-देह में भी उन्हें नहीं छोड़ी। यही कारण है, उन्होंने राजा से कहा, कि वे अब संसार में अज्ञात और अनासक्त विचरते हैं, मनुष्यों की उलझाने वाली संगति से सावधान। और यही, उन्होंने कहा, प्रत्येक आत्मा का मार्ग है: पावनों की संगति में तीक्ष्ण किए गए ज्ञान की तलवार से मोह के समस्त बन्धनों को काटकर, और श्रीहरि की कथाओं को कहकर और सुनकर भगवान् की निरन्तर स्मृति प्राप्त कर, मनुष्य अन्ततः अपनी दीर्घ यात्रा के परले तट को पार कर लेता है — और स्वयं भगवान् को प्राप्त कर लेता है।



ऋषि अपने छिपे इतिहास को प्रकट करते हैं — कि वे कभी राजा भरत थे, एक ही आसक्ति से मृग रूप में पुनर्जन्म ले बैठे, फिर भी श्रीकृष्ण की आराधना से जागृत स्मृति को बनाए रखा (श्लोक 14-16)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

सांसारिक पद एक नाम के अतिरिक्त किसी वस्तु पर नहीं टिकता। राजा और कहार, शासक और शासित — ऋषि दिखाते हैं कि ऐसी समस्त उपाधियाँ पृथ्वी के क्षणभंगुर रूपों को दी जाती हैं। जब हम इसे थोड़ा भी देख लेते हैं, तब ऊँचे पद का अभिमान और नीचे पद की लज्जा दोनों हम पर से अपना अधिकार खो देते हैं।

समूचा दृश्य संसार माया की एक लीला है। छोटा और बड़ा, कारण और कार्य, सजीव और निर्जीव — प्रत्येक भेद जिसे हम इतनी व्याकुलता से बचाते हैं, वह, ऋषि सिखाते हैं, भगवान् की अपनी शक्ति की रचना है, जो अनेक नामों में प्रकट होती है। वह उतना ही सत्य है जितना एक स्वप्न सत्य है, और उतना ही क्षणभंगुर।

चैतन्य ही एकमात्र सत्य है, और उसका नाम वासुदेव है। बदलते संसार के नीचे और परे वह एक शुद्ध, अपरिवर्तनीय सत्य खड़ा है — स्वयं भगवान्, जिन्हें द्रष्टा वासुदेव कहते हैं, समस्त का विश्राम-स्थल। उन्हें जानना उस भूमि को पा लेना है जो कभी नहीं धँसती।

सबसे निश्चित मार्ग भक्तों के चरणों की धूल है। तपस्या नहीं, कर्मकाण्ड नहीं, न ही अकेला ज्ञान द्वार खोलता है, अपितु पावन आत्माओं की संगति की विनम्र कृपा, जहाँ भगवान् की महिमा गाई और सुनी जाती है। सन्तों के शब्दों पर वहन की गई भक्ति वह करती है जो हमारा समस्त प्रयत्न नहीं कर सकता।

एक बड़ा पतन भी भगवान् की कृपा को नहीं मिटा सकता। ऋषि की अपनी कथा — एक भक्त राजा जो एक ही आसक्ति से मृग रूप में जन्मा, फिर भी भगवान् से कभी परित्यक्त नहीं हुआ — हमें दोनों सिखाती है: कि हृदय को छोटी आसक्तियों से बचाएँ और यह विश्वास रखें कि सच्ची आराधना कभी व्यर्थ नहीं जाती।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में कितनी कोमलता है, जब हम उसे देख लेते हैं। एक राजा जिसने एक श्रमिक को दण्ड देने को हाथ उठाया था, अब उसी श्रमिक के चरणों में बैठा है, और ऋषि — जिन्हें एक अभिमानी मौन का पूरा अधिकार हो सकता था — उसे निन्दा से नहीं, अपितु अपने पास जो सर्वोच्च उपहार है उससे उत्तर देते हैं: सत्य से। वे राजा को अपमानित नहीं करते; वे उसे मुक्त करते हैं। वे “मैं शासक हूँ, और यह मेरा है” की समूची अभिमानी संरचना को, ईट-दर-ईट धैर्य से, तोड़ देते हैं — राजा को रिक्त छोड़ने के लिए नहीं, अपितु उसे उस एक वस्तु तक ले जाने के लिए जो कभी छिनी नहीं जा सकती — वह शुद्ध, अपरिवर्तनीय सत्य जो स्वयं भगवान् है। और फिर, सबसे मार्मिक रूप में, ऋषि अपना ही वेश उतारकर अपने पतन को स्वीकार करते हैं, मानो कह रहे हों: मुझे भी कभी दूर तक जाना पड़ा था; मैं भी अपने बल से नहीं, अपितु भगवान् की स्मृति और पावनों की कृपा से बचा। इस ज्ञान में कोई शीतलता नहीं, केवल करुणा है। यह हमें बताता है कि जिस भूमि पर हम खड़े हैं — हमारे नाम, हमारे पद, हमारी सम्पत्तियाँ — वह सब जल में मिट्टी के समान घुल जाएगी, और यह कोमलता से हमें उस एक शरण की ओर मोड़ देता है जो नहीं घुलेगी: भगवान् के चरण, और उनसे प्रेम करने वालों के चरणों की धूल।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, जब भी आप स्वयं को किसी उपाधि, किसी भूमिका या किसी सम्पत्ति पर टिकते हुए पकड़ें — “मैं ही यहाँ प्रमुख हूँ,” “यह मेरा है,” “यहाँ मैं महत्त्वपूर्ण हूँ” — तो रुककर ऋषि के शान्त शब्दों को स्मरण कीजिए: यह सब पृथ्वी के एक रूप पर एक क्षणभंगुर नाम है। अपनी पकड़ ढीली कीजिए, चाहे थोड़ी ही, और उस भगवान् की ओर भीतर मुड़िए जो आपका सच्चा और अपरिवर्तनीय आधार है, कोमलता से कहते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” और ऋषि के सबसे निश्चित मार्ग को एक छोटे-से कर्म में अपनाइए — आज श्रीहरि की महिमा का थोड़ा पढ़िए या सुनिए, अथवा उनसे प्रेम करने वालों की संगति में (प्रत्यक्ष अथवा उनके शब्दों के माध्यम से) कुछ क्षण बिताइए। भक्तों के चरणों की धूल खोजने में, हम उसी मार्ग पर चलते हैं जो ऋषि ने राजा के लिए अंकित किया।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय हमें राजा रहूगण के विनम्र होने का फल देता है। जिस ऋषि के साथ उसने अन्याय किया था, उसके समक्ष झुककर, राजा उनके शब्दों को एक स्वस्थकारी अमृत कहता और सिखाए जाने की प्रार्थना करता है; और ऋषि दुर्लभ गहराई के एक उपदेश से उत्तर देते हैं। वे दिखाते हैं कि नीचे का कहार और ऊपर का राजा दोनों समान रूप से पृथ्वी के विकार मात्र हैं, कि संसार के समस्त भेद माया की रचना पर मात्र नाम हैं, और कि चैतन्य ही एकमात्र सत्य है — वह प्रभु जिन्हें विवेकी जन वासुदेव कहते हैं। यह, वे स्पष्ट करते हैं, न तपस्या से, न कर्मकाण्ड से, न अकेले शास्त्र-ज्ञान से, बल्कि केवल महात्माओं के श्री चरणों की रज में स्नान करने से सुलभ होता है, जिनकी संगति में प्रभु का यशोगान श्रवण किया जाता है। और फिर वे अपना वेश उठाते हैं, यह बताते हुए कि वे कभी राजा भरत थे, एक ही आसक्ति से मृग की देह में गिरे, और इस सब के बीच श्रीकृष्ण की कृपा से वहन किए गए। यह एक ऐसा अध्याय है जो हमारे हाथों को प्रत्येक मिथ्या सहारे से रिक्त कर देता है और उनमें उस एक शरण को भर देता है जो चिरस्थायी है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, द्वादश अध्याय, “Bharata answers the query of Rahugana।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-12-jada-bharata-reply-to-king-rahugana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट